लोक साहित्य में जनजातीय समाज की समस्याएँ

(*दक्षिण भारत के* संदर्भ में)

डॉ. राजश्री पी. मोरे
सहायक प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,
उस्मानिया विक्ष्वविध्दालय, हैद्रराबाद।

लोक शब्द एक व्यापक अर्थ को लिए हुए है। इसका कारण अपनी आंतरिक गतिशीलता है। वेदव्यास की *शत साहस्त्री संहिता* में भारतीय लोक जीवन के अनेक मार्मिक चित्र मिलते है और इसी में उन्होंने लिखा है- *प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः* अर्थात अनुभूत किए यथार्थ पर आधारित मानवीय अनुभूतियों से जीवन जुड़ा रहता है और ये अनुभूतियाँ रचना में संवेना को आधार बनाकर स्पंदित होती रहती है। डॉ. हरव्दारी लाल शर्मा लिखते है- *लोक* शब्द का लंबा इतिहास है पर हमें इसके लिए जंगल में जाना अनिवार्य नही। यह वेदों से चलकर आया है और युगों की यात्रा में इसका अर्थ और रुप परिवर्तन हुआ। वेदों में यह विश्व का पर्याय है। जहाँ इसका अर्थ और रुप परिवर्तन हुआ। वेदों में यह विश्व का पर्याय है। जहाँ इसका अर्थ है *बहु* और *सर्व।* 1

दक्षिण भारत की लोक की विभिन्न परिस्थितियों पर चर्चा करने से पश्चिमी देशों का अभिप्राय जान लेना भी श्रेयस्कर होगा। अंग्रेजी में लोक का पर्यायवाची *फोक* है। डब्लू.एस.थॉमस ने 1846 ई. में कहा था- *सभ्य जातियों में मिलने वाले असंस्कृति समुदायों की प्रथाओं एवं रीति-रिवाजों के परंपरागत ज्ञान के रुप में की थी।* 2

अतः कहा जा सकता है कि सभी प्राचीन विक्ष्वासों, प्रथाओं, परंपराओं का पूर्ण योग, जो आज की तथाकथित समाज के अल्प शिक्षित लोगों के बीच आज तक प्रचलित है, वही *लोक साहीत्य* है। इसकी परिधि में लोकानुभुतियाँ, कहानियाँ, पौराणिक, कथाएँ, उत्सव, अंधविश्वास, परंपरागत खेल, लोकगीत, लोकनृत्य, कहावतें, कलाएँ आदि सभी आते हैं।

जिस प्रकार अन्य अनेक मूल शब्दों के परिवर्तन होते चले गए, उसी प्रकार *लोक* शब्द का भी संदर्भ बदलता गया। इसकी अवधारणा भी बदल गयी है। यह *लोक* शब्द सामान्य से विशेष की पहचान है।

लोक शब्द आज आधुनिक संदर्भ में एक संकीर्ण अर्थ लिए हुए है। इस *लोक* शब्द से यह अभिप्राय है कि वह समाज जो अभिजात संस्कार, शास्त्रूयता और पांडित्य की चेतना और अहंकार से शून्य है और जो एक परंपरा के प्रवाह में जीवित है।

लोक साहित्य का यथार्थ रूप भारत के दक्षिणी प्रान्तों में दिक्षिण में आदिवासियों की संस्कृति का हिन्दू-संस्कृति या अन्य संस्कृतियों में हो चुका है। यहाँ भी अब बची-खुची आदिवासी सास्कृति को बचाने का प्रयास शुध्द हो गया है। इसके दो कारण है – एक तो यह विदेशी और भारत के ही मैदानी क्षेत्रों के लोगों ने आकर उन्हें उनकी संस्कृति को पिछड़ा, असभ्य और जंगली कहकर उनमें हीन-भावना भरने की कोशिश की और इसका प्रभाव ऐसा पड़ा के यहां के पढ़े-लिखे आदिवासी लोग अपनी संस्कृति को हो हेय समझने लगे। परन्तु आज ये अवश्य धीरे-धीरे चेतनाशील हो रहे हैं।

दक्षिण भारत के लोक साहित्य में सामाजिक और सांस्कृतिक समस्याओं का उद्घाटन बड़ी मार्मीकता से किया गया है।

दक्षिण प्रदेशों में संस्कृति के दिन सभी नवधान्य की पूजा करते हैं। टांडे के सभी लोग पशुओं को सजाते हैं। गाय और बैलों के सींगों को रंगते है। टांडे वाले मिलकर बकरे की बली देकर दावत करते हैं। स्त्री-पुरुष संध्या सायं पर गीत गाते हैं। वे नाचते हैं। इस प्रकार संक्रांति मनो-उल्लास के साथ मनायी जाथी है।

दक्षिण भारत मे होली कमदहन के रुप मे मनायी जाती है। बंजारो का सब से बड़ा त्यौहार है, होली! यह त्यौहार बाल, वृध्द, स्त्री, पुरुष सभी लोग हास्य, उल्लास से मनाते हैं। बंजारे होली से 10-15 दिन पहले ही खेलना आरंभ का देते हैं। इन त्यौहार के बंजारिन के कंठों से हजारों लोक-गीत फूट पड़ते हैं।

तेलुगु लोक साहित्य की परंपरा में बालशौरी रेड्डी ने भी व्यापक सृजन किया है। उन्होंने प्राचीन लोककक्षा साहित्य का पुनर्सृजन किया है। *तेलुगु की लोककथाएँ* इनकी एक उत्कृष्ट कृति है। रेड्डी जी के साहीत्य ने दक्षिण भारत से उत्तर भारत को जोड़ने का एक भाषायी सेतु निर्माण किया है। *चंदामामा* हिन्दी संस्करण इसका सबसे प्रबल उदाहरण है। *इस तेलुगु की ज्ञात लोककथाओं धरातल पर इसका महत्व बढ़ेगा। जनपदीय लोकसभा साहित्य का संकसन इस तरह करने से हमारे देश के इतिहास को नया प्रकाश प्राप्त हो सकेगा।* 3

संसार सामाजिक समस्याओं से भरा पड़ा है। लोकसाहित्य में भी यह समस्याएँ परिलक्षित होती है। दक्षिण के बंजारा जाति की समस्याएँ दृष्टिव्यय है। इनमें प्रमुख है- जातिवाद की समस्या, छुआछूत की समस्या समस्या, सामाजिक कुरितियों की समस्या, अशिक्षा की समस्या, असभ्यता की समस्या आदि। जहाँ पिछड़ापन होगा वहाँ समस्याओं की भरमार होती है। जैसे आंध्र के समुद्रतट पर बसे मछलीपट्नम के गाँव और जंगलों में बसे आदिवासी। इन आदिवासियों को आज भी वस्त्रों का ज्ञान नही ये लोग नाम मात्र के लिए वस्त्र पहनते है। इन आदिवासियों को घर की समस्या, पीने के पानी की समस्या, भोजन की समस्या आदि मूलभूत समस्याओं का सामना आए दिन करना पडता है।

ये समस्याएँ काफी नही हैं बल्कि कुरीतियाँ भी इनका पीछा नहीं छोड़ती। बली की प्रथा ने भी इन्हें प्रभावित किया हुआ है। यहाँ पर भी नारी पर अत्याचार देखने को मिलता है। परन्तु इनमें सेवा भाव भी देखने को मिलता है। बंजारा लोग देवी-देवताओं और साधओं को भी पूजते हैं। इस बात की पुष्टि रामकोटी जी व्दारा दी गया बालाजी की प्रार्थना में देखी जा सकती है। प्रार्थना का नाम *बालाजी वींती* हैं।

बालाजी रो भंडारो वेरोचे

सणों सामने संगत भाई

बाळ-गोपाळ से आव-जाव रोईत

(यह वचन तीन बार जोर से बोले जाते हैं।)

अर्थात बालाजी भगवान की पूजा हो रही है, सुनो-सुनो संगत भाई, बाल-गोपाल सभी आकर जाओ राई...त। 4

आंध्र में *कोंडा रेड्डी* कोया, बंजारा आदि जनजातियाँ है। जो भद्राचलम के जंगलों में रहते है। कोंडा रेड्डी जाति पहाड़ी इलाके में निवास करती है। इस जनजाति ने आज भी अपनी प्राचीन संस्कृति पर ही चलती है। इन्हें अपनी संस्कृति पर गर्व भी है। *कोया* लोग प्रदेश के भीतर जंगलों में निवास करते है। ये लोग प्रचीन परंपराओं का निर्वाह आज के और ज्योतिषशास्त्र पर इनकी अच्छी पकड़ है। *बंजारी* जाति प्रदेश के मैदानी इलाकों में रहते हैं। वैसे देखा जाए तो ये नवनिर्मित आंध्र और सारे तेलंगाना में फैले हुए है। यहाँ के ये आदिवासी सामाजिक समस्यओं से अछूते नहीं है, परन्तु समकालीन समय में आई.टी.डी.ए. नाम ट्राइबल एजेंसी इस पर प्रषंसनीय कार्य कर रही है।

अतः कहा जा लकता है कि दक्षिण भारत में लोक साहित्य का निर्माण प्रचूर मात्रा में हुआ है। इसी साहित्य के कारण उनकी सामाजिक व्यवस्था पर दृष्टिपात किया गया है। वैसे भारत की जनजातियाँ हिन्दु समाज के संस्कारों, रीति-रिवाजों, पर्व-त्यौहारों, शादी-ब्याह आदि के समान ही है। इनकी समस्याएँ भी समान ही हैं। न सामाजिक समस्याओं का मूल कारण इनका अशिक्षित होना ही है। सरकार व्दारा प्रयास तो किए जा रहे हैं, परन्तु उतनी रफ्तार के कुछ जिलों में आदिवासी आंदोलन भी चलाए जा रहे है। जमींदार तथा सरकार के विरोध में ये कई बार संघर्ष कर चुके है। यदि इनमे बदलाव लाना है तो आन्तरिक परिवर्तन अत्यंत आवश्यक है। इन्हे सभ्य समाज के साथ कंधे से कंधा सिलाकर चलना सिखाना होगा। सबसे पहले जनजातीय वर्ग पत्रिका प्रांतीय या राष्ट्रीय आधार पर निकालना होगा। पत्रकारिता एक सक्षम माध्यम है जिसके आदार पर यह लोक आलोक में आएगा।

लोकजीवन की समस्याएँ चिंता का विषय अवश्य है परन्तु प्रकृति के साथ इनका रागात्मक संबंधी काफी मार्मिक और रोमांचक है।... *आज भी अंडमान के जाखा और सेंटेन ली जनजाति प्रकृति के हिसाब से जीते हैं। जैसे हिरण कम है तो कहते है उसे नहीं मारना है। हिरण में मत आत्माओं के वास होता है। सूअर ज्यादा है तो उसे खाते हैं। नीले रंग की स्टार फिश कम है तो उसमें माँ परी का रुप देखते हैं और उसे नहीं मानते। प्रकृति के सगे हैं। यह भी इन जनजातियों से सीखा जा सकता है।* 5

यह युग का कडुवा सच है कि आदिवासी हमेशा ही खदेडा गया है, नर्मदा घाटी परियोजना हो या फिर नंदीग्राम की समस्या या फिर कहों अमरावती प्रांत का विस्थापन। आर्थिक विकास की दर अन्तराष्ट्रीय मानदंडों पर भल ही उत्कर्ष पर हो, परन्तु लोरजाति तो वहीं पर खड़ी है जहाँ वह अपनी पहचान के लिए तरड़पता, सभ्य जीवन के लिए ललचाता, प्रकोप के सम्मुख नतमस्तक होने के लिए मजबूर है। कवि सुरेन्द्र वर्मा ने इस संदर्भ को काव्य पंक्तियों के माध्यम से समझाने का सपल प्रयास किया है।

भगवान बिरसा,

एक बार देख तो लो

अपना गाँव उलहातू

कल की ही बात है

यह सब याद आ जाएगा

कभी होते थे तुम ताना, भगत, छेड़ा था अंग्रेजों के खिलाफ

हथियारबंद आंदोलन

दिखाया था आदिवासी राज्य का कपना

बहुत खुश हो जाओगे जानकर

अंग्रेज दुम दबाकर भाग गए आह। 6

इस प्रकार समकालीन साहित्यकारों ने साहित्य का सृजन कर हमें जनजातिसे परिचित कराने का प्रयास किया है। इससे स जाति को नवीन विमर्श की चुनौती मिली है। अतः आशा है साहित्य की भावी पीढ़ी इस पुण्य पथ पर अवश्य चलेगी और एक सकारात्मक कार्य का श्रीगणेश होगा।

संदर्भ :

1. साठोत्तरी हिन्दी कविता लोक सौंदर्य – श्री प्रकाश शुक्ल, पृ.13
2. फोकलोर – इनसाइक्लोपिडिया, भाग -10
3. इंटरनेट, दक्षिण भाषा के सहान लोककथा साहुत्यकारस, पृ. 175
4. बंजारा लोकगीत – डॉ. रामकोटी, पृ. 149
5. रवीश कुमार, ब्लाक वार्ता, आदिवासी अफसर की बात।
6. युध्दरत आम-आदमी, सितंबर 2008, पृ.14